॥ ओउम् श्रीहरिः ॥

स्वामी रामतीर्थ

का

जीवन चरित्र

रचयिता

गोलोकवासी पं० लालाराम शुक्ल

॥ ॐ ॥

देश के प्रसिद्ध विद्वान–मनीषी

आदरणीय पं० मुन्शीराम जी शर्मा 'सोम'

एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्

भूतपूर्व अध्यक्ष

हिन्दी विभाग

डी० ए० वी० कालेज, कानपुर

की

शुभाशंसा

वंश-परम्परा का प्रेम, पूर्वजों का संस्मरण और संस्कार की संप्रेषणीयता सर्वत्र और सर्वदा हृदय-ग्राह्य एवं अनुकरणीय समझे गए हैं। स्व० पं० लाला राम जी शुक्ल अपने हृदय में कुछ ऐसे ही भावों को स्थान देते थे। उनके सुपुत्र पं० पी० एन० शुक्ल, डिप्टी पुलिस सुपुरिटेण्डेण्ट, अपने पिता के लिखे हुए इस जीवन-चरित्र को, जिसमें अमर कीर्ति, परमहंस श्री स्वामी रामतीर्थ जी महाराज का जीवन-वृत्त कविताबद्ध किया गया है, प्रकाशित कर पितृ-ऋण से उऋण होने का पवित्र कार्य कर रहे हैं।

'पाठक, वही सुत धन्य है जो तात-यश वर्धित करे।
संसार में यों अन्यथा बहु जन्म ले लेकर मरे।'

अपने पूज्य पिता की काव्यकृति को प्रकाशित कर तथा उन्हें समर्पित कर श्री शुक्ल जी ने सराहनीय कार्य किया है। मैं हृदय से उन्हें साधुवाद देता हूँ।

प्रस्तुत रचना स्वामी रामतीर्थ जी की जीवन-गाथा के द्वारा हम सबको कर्तब्य-पथ पर चलने के लिए प्रेरणा देगी, ऐसा विश्वास है।

मुन्शीराम शर्मा

दिनांक २–३–८४

९/७०, आर्य नगर
कानपुर

।। श्रीगणेशायनमः ।।

समर्पण

परमहंस श्री स्वामी रामतीर्थ जी

"कवि की नही कछु शक्ति है नहिं चाह है कुछ मान की
किंचित मुझे इच्छा नही है दाद के भी दान की
केवल समर्पण है मेरा यह राम के स्मर्ण में
दिल के फफोले फूँकता मैं पाठकों के कर्ण में"

–लालाराम शुक्ल

मिती कार्तिक वदी ३० अमावस्या शुक्रवार
संबत् १९८३ वि०

निवेदन

समस्त सज्जनों तथा राम प्रेमियों की सेवा में श्री १०८ श्री रामतीर्थ जी परमहंस की जीवनी इस (कविता) रूप में समर्पित करता हूँ यह मेरी कोई उक्ति तथा अनूठी कविता नही है केवल मेरे हृदय के उद्‌गार तथा दिल के फफोले हैं मैंने यह "पद रूप जीवनी" श्रीयुत चन्द्रिका प्रसाद गुप्त लिखित जीवनी के आधार पर लिखी है मैं उक्त महाशय जी का हृदय से कृतज्ञ हूँ और जो कोई त्रुटि हो उस के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

—लालाराम शुक्ल
सरस्वती पाठशाला
फतेगढ़ यू० पी०

समर्पण–

कृतिकार
गोलोकवासी लालाराम शुक्ल

कृतिकार की धर्मपत्नी तथा पुत्र

मातृ–पितृ चरणों में मेरा शत–शत बार प्रणाम।
पुण्य–श्लोक परम पावन तुम संगम तीर्थ ललाम।
श्रद्धा–आस्थामयी आपकी वाणी का यह रूप।
भारतीय आध्यात्मिकता का उज्ज्वल चरित अनूप।
श्री चरणों में अर्पित कर मैं हुआ आज ऋण मुक्त।
दो मुझको आशीष कि मैं नित रहूँ धर्म संयुक्त।
राम तीर्थ की पावन गाथा से हम बने पवित्र।
और राष्ट्र की स्वतन्त्रता का खीचें निर्मल चित्र।
भारत माता की सेवा में करें आत्म बलिदान।
जिससे हो मानवता का नितप्रति उत्कर्ष महान।

विनीत–
पी० एन० शुक्ल

पूज्य पिता जी,

आपने मेरे जन्मकाल से पहले ही स्वामी रामतीर्थ जी महाराज का जीवन चरित्र लिख डाला था। आपकी और अन्य रचनायें भी रक्खी हैं। उन्हें भी प्रकाशित करने का यथाशीघ्र प्रयत्न करूँगा।

श्री पी० एन० शुक्ल
क्षेत्रीय पुलिस अधीक्षक, कानपुर

कई सन्त महापुरुषों के साथ आप का पत्राचार भी सुरक्षित है, जिससे आपके सन्तमय जीवन का स्पष्ट आभास मिलता है। उन्हें भी प्रकाशित करने का प्रयत्न करूँगा। एक दो पत्र तो इस पुस्तक में भी आपके परिचय के साथ दिए जा रहे हैं। आपके पूज्य चरणों में कोटिशः प्रणाम।

आपका पुत्र

पी० एन० शुक्ल

देश के प्रसिद्ध महात्मा स्वामी शरणानन्द जी के कवि के नाम दो पत्र ।

मेरे निज स्वरूप श्रद्धेय श्री पं० जी !

सप्रेम नारायणम्

भिन्न भिन्न स्थानों पर विचरता हुआ कार्यक्रम के अनुसार ता० ५ अगस्त को पुनः नैनीताल आ गया ।

चि० कृष्ण स्वरूप त्रिवेदी के विषय में डी. पी. आई. उदयपुर को लिख दिया है । देखिये लीलामय भगवान क्या करते हैं ।

प्राकृतिक विधान के अनुसार रोगी और बालकों की आर्थिक समस्या का उत्तरदायित्व राष्ट्र तथा धर्मात्माओं पर है, क्योकि अपने कर्तव्य से दूसरों के अधिकार को सुरक्षित रखना, धर्म और बल के सदुपयोग से निर्बलों की रक्षा करना राजनीति है ।

उपार्जित अर्थ का महत्व केवल उपभोग काल में है । रोगी तथा बालक के जीवन में उपभोग नहीं होता अतः उन्हें सात्विक भिक्षा प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेना चाहिए ।

जब से मानव समाज ने भिक्षा को उपार्जन से अधिक महत्व नहीं दिया तब से मानव के मन में अर्थ संग्रह की भावना बढ़ गयी, जिससे व्यक्ति तथा विवेक की महत्ता घट गई, अर्थात् विश्व एकता का जीवन नहीं रहा, जिसके कारण धर्मशून्य समाजवाद का जन्म हुआ, जो मानव के ह्रास का मूल है, अतः धर्म प्रेमियों को भिक्षा का महत्व बढ़ाने के लिए सात्विक भिक्षा अवश्य स्वीकार करना चाहिए ।

कुछ दिन पूर्व एक उदार ब्राह्मण भक्त ने कुछ रुपया मेरे पास बिना ही माँगे मेरी इच्छानुसार खर्च करने के लिए भेजा था जिसमें से लगभग २००) रु० शेष हैं जो देहली में एक सज्जन के पास रखा है ।

मैंने आज उन सज्जन को लिखा है कि वे शीघ्र उस रुपया को आपकी सेवा में भेज दें । आपसे सविनय प्रार्थना है कि मेरी प्रसन्नतार्थ उस रुपया को रोग पीड़ित निर्बल शरीर पर जिसे साधारण प्राणी आपका समझते हैं, लगा दें । मैं तो उस शरीर को विश्व की विभूति समझता हूं । यदि किसी कारण आप उस शरीर पर लगाना उचित न

समझें तो जो विद्यार्थी सावित्री पाठशाला में पढ़ता है, जिसे लोग बेसमझी से आपका पुत्र कहते हैं, उसकी सेवा में लगा दें।

आशा है कि आप मेरी प्रार्थना अवश्य स्वीकार करेंगे ऐसा मेरा विश्वास है।

पं० जी ! साधन की कमी से विवश हूं, नहीं तो मेरी रुचि विश्व के रोगी तथा बालकों की सेवा करने की है। मैंने जो कुछ लिखा है, धर्म समझ कर, मोह वश नहीं। अतः आपको मेरे धर्म की रक्षार्थ मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लेनी चाहिए।

मैं केवल स्वाभाविक प्राप्तार्थ से आर्थिक सेवा करना पसन्द करता हूँ, क्योंकि इस समय का मानव-समाज मूक सेवा करना भूल गया है। आज तो केवल वाह्य चिन्हों का बोल बाला है, जिससे सच्ची सेवा हो नहीं पाती।

पं० जी ! मैंने जो कुछ लिखा है, उस पर आप तर्क न कीजिये। ॐ आनन्द आपका हितैषी—शरणानन्द। ८—८—४८

\+ \+ \+

"मेरे मन में यह दुःख है कि वर्तमान मानव समाज सिक्के के अभिमान में आबद्ध होकर उन्नतिशील प्राणियों के जीवन का सदुपयोग नहीं कर पाता।

जो समय आपका साधारण बच्चों के शिक्षण में व्यतीत कर प्राण शक्ति को व्यय किया जाता है। यदि वह अध्यात्म-कार्य में मूक-सेवा रूप में आपके पवित्र-जीवन का उपयोग करने का अवसर, वर्तमान मानव-समाज देता तो भौतिकबाद पर अध्यात्मवाद बड़ी सुगमता से विजय प्राप्त करता। आज बड़े-बड़े विद्वान सिक्के में बिक जाते हैं जिससे भौतिक वाद की महत्ता बढ़ जाती है। जो मानव के ह्रास का मूल है।

मेरे विश्वास के अनुसार व्यक्ति का निर्माण ही विश्व के कल्याण हेतु है आपके शरीर पर परिवार का बोझा लाद देना मानव समाज की बेसमझी है। आपके द्वारा अध्यात्म विद्यालय का निर्माण किया जावे; तो आपकी प्राण शक्ति का सदुपयोग हो सकता है। ॐ आनन्द आपका—शरणानन्द। १३—८—४८

भूमिका–

इस देव वन्दिता भूमि में चराचर जगत के स्वामी जरा–जन्म मरणादि रहित अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड नायक सर्वेश्वर भगवान लोक कल्याणार्थ 'अजायमानो बहुधा विजायते' के सिद्धान्तानुसार यथा समय लीलावतार धारण करते हैं। इसी लिए तो भारत भूमि को 'पुण्या भारत भूरेखा' कहा गया है। अनादि काल से त्यागी, तपस्वी, योगि, यति, सिद्ध, लोकोद्धारक महर्षि गण भी इसी भूमि को स्वजन्म से अलंकृत करते रहे हैं। ऐसे ही महापुरुषों में से एक थे पूज्य स्वामी श्री रामतीर्थ जी महाराज।

योग दर्शन का यह सूत्र–'वीतराग विषयं वा चित्तम्' बतलाता है कि जो लोग वीतराग महापुरुष हों जिनका राग-द्वेष समाप्त हो चुका हो उनका ध्यान करने से, उनके पुण्य कर्मों का चिन्तन करने से, चित्त स्थिरता को प्राप्त होता है। जिनके सत् कर्मों से हमें प्रेरणा प्राप्त हुई हो उनका गौरव के साथ स्मरण करना हमारी भारतीय संस्कृति है। इस भाव से भावित होकर स्व० पंडितराजश्री लालाराम जी शुक्ल ने पुण्यश्लोक स्वामी श्री रामतीर्थ जी महाराज के जीवन–वृत को जो कविता वद्ध किया है उसको पढ़ने से हमें पण्डितराज के सदाचार सम्पन्न होने एवं अनुकरणीय गुणों वाले महामानव के रूप में अनायास ही परिचय प्राप्त हो जाता है।

आज स्वर्गीय पंडितराज जी के यशस्वी सुपुत्र हमारे आत्मीय श्री पी० एन० शुक्ल, पुलिस, उप–अधीक्षक (पंचम) कानपुर ने अपने स्व० पूज्य पिता श्री की अप्रकाशित काव्य रचना 'स्वामी रामतीर्थ का जीवन चरित्र' को प्रकाशित कर एवं उन्हें आर्द्र श्रद्धा के साथ समर्पित कर एक स्तुत्य कार्य का सम्पादन किया है। पिता ने बहुत सोच समझ कर अपने इस बेटे का नाम 'पुरुषोत्तम नारायण' रखा होगा। तभी तो इनका नाम स्वयं ही इनके परिचय के लिए पर्याप्त है। ये वह व्यक्ति हैं जिनकी धवल कीर्ति से शुक्ल वंशाकाश चिरंतन काल तक आलोकित होता रहेगा।

प्रस्तुत पुस्तक को पढ़ कर धार्मिक जगत को निश्चय ही दिशा बोध मिलेगा, इसमें सन्देह नहीं। श्री शुक्ल जी को मेरी हार्दिक मंगल कामना—

भवदीय

ज्येष्ठ पूर्णिमा **–आत्म चैतन्य ब्रह्मचारी**

१३ जून १९८४

परिचय—

हमारे नगर तथा हमारे क्षेत्र के जनप्रिय डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस श्री पी० एन० शुक्ल जी से अभी हाल में ही हुआ परिचय उनके सरल एवं मिलन सार स्वभाव के कारण अधिक निकटता एवं घनिष्टता में परिवर्तित हो गया। पंजाब समस्या पर रचित अपनी नवीनतम पुस्तक 'पंजाब' तथा अपना कुछ साहित्य हमने श्री शुक्ल जी को भेट किया, श्री शुक्ल जी ने अपने पूज्य पिताजी द्वारा रचित प्रस्तुत पुस्तक हमें दिखाई तथा प्रकाशित करने की इच्छा प्रकट की, अपनी व्यस्तता के कारण पुस्तक की छपाई की जिम्मेदारी मुझे सौप दी। पुस्तक में रह गई त्रुटियों की सम्पूर्ण जिम्मेदारी मुझ पर होगी। श्री शुक्ल जी द्वारा एकत्रित की गई सूचनाओं के आधार पर निम्नांकित परिचय प्रस्तुत है—

गोलोक वासी गृहस्थ सन्त पं० लालाराम जी शुक्ल का जन्म इटावा जिलान्तर्गत-ग्राम भोजपुर में एक सम्भ्रात ब्राह्मण परिवार में श्री पं० तुलजा राम जी शुक्ल के यहाँ १९०१ ई० में हुआ था। अपने ग्राम से कुछ दूर जसवन्त नगर से आपने मिडिल की परीक्षा उत्तम श्रेणी में उतीर्ण की। शिक्षा समाप्ति के बाद आप कुछ दिन अपने ग्राम में रहे और इसी अवधि में आपका ब्याह राम श्री देवी जी के साथ हो गया। आप कुछ दिनों के बाद फतेहगढ़ चले गये और वहाँ एक विद्यालय में अध्यापन कार्य करने लगे।

महाकवि 'देव' के कथनानुसार "शक्ति कवित्त बनाइवे की, जेहि जन्म नक्षत्र में दीन्हीं विद्या तै" आपको जन्मजात काव्य-शक्ति प्राप्त थी। आप प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में उठ कर धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन तथा गद्य-पद्य की रचनायें किया करते थे। "सादा जीवन उच्च विचार" के आप प्रत्यक्ष प्रतीक थे। अपनी थोड़ी सी आय मे अत्यन्त मितव्ययिता से जीवन निर्वाह कर शेष धन से साधु-सन्तों का सत्कार किया करते थे। एक न एक महात्मा आपके घर प्रायः पधारने की कृपा किया करता था जिसका आप पूर्ण रूपेण सत्कार करते थे और उसके उपदेशों से कृतकृत्य होते थे। निरन्तर सन्त महात्माओं के सत्संग से आप स्वयं सन्तमय जीवन व्यतीत करने लगे थे। सत्संग मे बाधा पड़ते देख आपने विद्यालय से भी त्याग-पत्र दे दिया और व

एक ट्यूशन करके अपने परिवार का भरण–पोषण के साथ-साथ साधु सन्तों की भी सेवा करने लगे। सन्त महात्माओं के प्रति आपकी श्रद्धा–निष्ठा के लिए केवल एक उदाहरण ही पर्याप्त प्रकाश डालता है– कहते हैं कि जब आप विद्यालय में कार्यरत थे तब वेतन मिलने के दिन सायंकाल आप कई-कई सन्तों को भोजन के लिए अपने घर पर आमन्त्रित करते थे एक बार समय पर आपको वेतन न मिल पाया और संतगण भोजन के लिए घर पर आ गये, आप तुरन्त अपनी घड़ी गिरवी धर कर सन्तों का सत्कार किया।

आपके आत्म बल और दृढ़ संकल्प के लिए भी एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा। ग्राम सीतापुर (जिला–फरुखाबाद) ग्राम अर्जुनपुर (जिला–हरदोई) की सीमा पर एक पाकर का विशाल वृक्ष था वहाँ की जनता उस वृक्ष पर भूतों का निवास मानती थी और उस वृक्ष के नीचे जाने में लोग भय खाते थे। आप एक दिन उसी वृक्ष के नीचे बैठ कर रामायण का पाठ करने लगे। कुछ लोगों ने उन्हें भूतों का भय दिखा कर वहाँ से चले जाने का अनुरोध किया किन्तु उन्होंने कहा कि परम पिता परमात्मा कण-कण में व्याप्त है तब हमें कहीं भी किसी से भी डरने का कैसा भय ? आप उस दिन रात में भी वहीं आसन जमाये बैठे रहे। प्रातः काल आस-पास के लोगों की भीड़ लग गई और लोग उन्हें कोई बड़ा करामाती व्यक्ति समझ कर श्रद्धा से प्रणाम करने लगे। आप ने उसी वृक्ष के नीचे रामायण का अखण्ड पाठ प्रारम्भ कर दिया जिसमें तमाम लोगों ने सहयोग देकर उस निर्भयता-यज्ञ को पूर्ण किया। उसके बाद प्रति वर्ष वहाँ रामायण–मेला लगने लगा और वह उनके जीवन के अन्तिम वर्ष में २९वां रामायण–मेला था।

आपका संतों के साथ पत्र व्यवहार होता रहता था, एक संत का एक पत्र यहाँ दिया जा रहा हैं जिससे आपकी निश्पृहता तथा स्वाभिमान पर पूरा प्रकाश पड़ता है।

संत महात्माओं के निकट सानिध्य में रहते हुए संतमय जीवन व्यतीत करते हुए आप पर राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का पूरा प्रभाव पड़ा था। आप नित्य प्रति आधा घंटा तकली से सूत कातने के बाद ही किसी प्रकार का जलपान करते थे। महात्मा तुलसीदास जी का

'मानस' तो आपके रोम-रोम में रम गया था। आपके इस संतमय जीवन में आपकी धर्मपत्नी जी का पूर्ण योगदान रहा। आपके ५ पुत्र तथा २ कन्यायें हैं। आपकी धर्मपत्नी का स्वर्गवास २५ दिसम्बर १९६५ में हुआ था तथा आपका गोलोकवास ४९ वर्ष की आयु में अक्टूबर ११४९ में हुआ था। गृहस्थ-संत दम्पति को हमारा कोटिशः प्रणाम्।

कविवर गोलोकवासी पं० लालाराम जी शुक्ल ने प्रस्तुत कृति में युग सन्त स्वामी रामतीर्थ जी के जीवन वृत्त को संक्षिप्त में हरि गीतिका छन्द में काव्यायित किया है। कवि श्री शुक्ल जी गोस्वामी तुलसीदास तथा राष्ट्रकवि स्व० मैथिलीशरण गुप्त से अधिक प्रभावित हुए हैं। लगभग ५० वर्ष पूर्व लिखी गई हिन्दी में आज आधुनिक संशोधित हिन्दी में जो अन्तर होना चाहिए वह इस कृति में भी है। कवि की कृति में किसी भी प्रकार का संशोधन उचित नहीं समझा गया अतः अविकल रूप में त्यों की त्यों छापना अधिक सारगर्भित समझा गया।

इस छोटी सी पुस्तक का पाठकों पर उनके जीवन उत्थान पर पर्याप्त प्रभाव पड़ेगा। एक संत द्वारा लिखी गई एक महान युग दृष्टा संत की जीवन गाथा भारतीय संस्कृति का एक सच्चा दस्तावेज सिद्ध होगा ऐसा हमारा निश्चित विश्वास है।

अन्त में हम कवि-पुत्र श्री पी० एन० शुक्ल के प्रति अत्यन्त आभारी हैं जिन्होंने इस संत गाथा में हमें भी प्रमुख भाग लेने का अवसर दिया।

'कवि-कुटीर'
आर्य नगर,
कानपुर

दीप नारायण शुक्ल 'दीप'
काव्य-शास्त्री
स्वतन्त्रता-संग्राम-सेनानी

॥ ॐ ॥

॥ ओ३म् ॥

कुछ प्रारम्भिक शब्द

आओ सुहृदजन सब मिलें मिलकर बधाई दें उन्हें,
जल भूमि अग्नि व्योम वायु ने बधाई दी जिन्हें ।
नाम कहना भी यहां पर ठीक समुचित है सही,
वह प्रबल आत्मा राम[1] थे कृतकृत्य जिनने की मही ॥

हे लेखनी बड़ भागिनी निज भाग्य का फल पाय ले,
करले सफल निज नोंक को तू राम के गुण गाय ले ।
पक्षी बनी पिंजड़े रही तू कील को अब खोल दे,
निर्जीव मनुजों के हृदय में आतम रस को घोल दे ॥

१– स्वामी रामतीर्थ जी

धन्य स्वामी राम थे जिन मातु गोद सफल करी,
धन्य उनके तात[1] थे अरु धन्य उनकी सुन्दरी ।
धन्य उनके पुत्र हैं धनि धन्य जो करदें मही,
यों ही गुणावलि जगत भर में सब कहीं जावे कही ।।

धन्य वह वह भूमि है जँह पद कमल उनके पड़े,
धन्य वे ही हैं हृदय जिनमें वचन उनके अड़े ।
धन्य श्रवणीरन्ध्र हैं जिसने वचन उनके सुने,
धन्य नेत्र वही हुये झड़ते हुये मोती चुने ।।

पाठक चलो आगे चलें कुछ गुंण कथा उनकी कहें,
आनंद आत्मानंद का कण कण चलो अब सब लहें ।
सोचो विचारो तो सही वह राम पहले कौन थे,
अब हम सुनाते हैं यहां सब दृष्टि में वे जौन थे ।

१– स्वामी जी के पिता जी

शिशु काल

पैदा[1] हुये निज मातु के जैसे हुये हम तुम सभी,
पर दुग्ध[2] मातु न पी सके विधि वामता देखो सभी।
बिनु मातु के पालन हुआ नायक हमारे राम का,
जो अमर होकर ही चले थे क्या करे विधि वामता ।।

मेरे सुहृद जन जो पिया है दूध तुमने मातु का,
तो राम से बढ़कर तुम्हारा है कलेवर वाम का।
इस लिये करने योग्य हो तुम राम ने जो कुछ किया,
क्या दे नहीं सकते सुहृदजन राम ने जो तन दिया ।।

राम का पालन हुआ निज पितृ[3] भगिनी के करों[4],
धन्य उनकी पितृ भगनी धन्य उनके शुभ करों ।
रग-रग भरा अनुराग[4] था सो राम के भी भर दिया,
इक बंद कलिका थी मिली सो सुमन ही तो कर दिया ।।

१– कार्तिक शुक्ल १ बुद्धवार सँ. १९३० वि (ता० २२ अक्टूबर १८७३ ई.)
२– नौ महीने की अवस्था में माता का देहान्त हुआ।
३– पिता की बहिन (स्वामी जी की बुआ) ४– हाथों
४– बहुत भक्ति करती थीं सारा समय पूजन भजन ही में व्यतीत होता था

पाठक सउत्सुक हो सजग सत्संग का फल देख लो,
पुत्र का इमि रत्न बनना निज दृगों से देख लो।
पुत्र होते हैं सभी के पुत्र कहते हैं सभी,
चाहें अगर जो रत्न करना, रत्न कर सकते सभी ॥

चल लेखनी आगे चलें प्राची[1] दिशा को देख ले,
बाल रवि सम बाल लीला राम की तू पेख ले।
देख ले तू चरित मेरे चरित नायक राम के,
अनुपम अमोल अवर्णनीया दिव्य शोभा धाम के ॥

शिशु काल सुख साधन न थे सुख से भला क्यों बीतता,
इक मातृ मृत्यु प्रतीव थी दूजे पिता की दीनता।
जैसे कटा होगा समय सो जानते होंगे वही,
हम तो सुनी जैसी कथा सोई यहाँ पर है कही ॥

१– पूरब दिशा

सब दुखों के साथ इनको सुःख एक अतीव था,
निज मातु सम जननीबुऐ गाथा श्रवण का चाव[1] था।
गोद ले जाना वहाँ[2] नित ढंग उनका हो गया,
बस शेष क्या अब तो रहा सोने सुहागा मिल गया।

शेष दुःखों का नहीं था और भी बढ़ते गये,
जड़ जमा कर बालपन में नये पग पड़ते गये।
दो ही बसर के राम थे तब ही सगाई[3] हो गई,
ना समुझ वह थे, कुरीती हाथ मिल के धो गई।

ज्ञात क्या था राम को मम तात यह क्या कर रहे,
सुःख हमको दे रहे या दुःख जीवन कर रहे।
बाधा उन्हें शिशु काल से पर सिंह शिशु क्या बध सके,
जो स्वयं बंधन है बना बन्धन उसे क्या कर सके।

१– स्वामी जी की वु वा नित कथा सुनने जाया करती थी

२– मंदिरों में

३– विवाह पक्का

तात की चढ़ गोद में इक दिन कथा[1] सुनने गये,
बस राम तो उस दिवस से मन में प्रतिज्ञा कर गये।
यदि पिता जावें नहीं झट शस्त्र[2] शिशुता का गहे,
बनने लगे नित पितृ विजयी वे बिचारे क्या कहें ?

॰

क्या विचित्र चरित्र थे जब तीन ही वर्षीय थे,
अनुपम प्रशंसा पात्र थे अद्वितीय अनुकरणीय थे।
पाठक न तुम आश्चर्य करना लघु उन्हें कहना नहीं,
तेजवन्तों को कभी लघु बुध कहीं गिनते नहीं।

॰

यों ही चरित होते गये अरु समय भी ढलता गया,
ज्यों आयु घड़ियां कम हुईं त्यों तेज नित बढ़ता गया।
बाल लीला तो हुई अब हो चुकी सो छोड़िये,
शिक्षा समय आगे चला उसमें तनिक मन जोड़िये।

१– मन में सोच लिया कि रोज कथा सुनेंगे
२– रोना

शिक्षा काल

आयू बढ़ी ज्यों राम की पग पांचवीं[1] सीढ़ी धरा,
त्यों ही पिता ने झट उन्हें ले पाठशाला में धरा ।
मिल गये विद्या गुरू इक मौलवी साहब वहाँ,
धनि भाग थे उनके बड़े, नहिं शिष्य[2] यों रक्खे कहाँ ।

बुद्धि अनुपम थी विलक्षण धारणा अति शुद्ध थी,
स्मृति बड़ी ही तीव्र थी पुरुषार्थ गति अवरुद्ध थी ।
अति अल्प तीनहि वर्ष में शिक्षा वहाँ की पूर्ण की,
प्रथम श्रेणी पत्र पाया साथ क्षात्रवृति ली ।

इतने समय में राम ने बोस्ताँ गुलिस्तां सीख ली,
गुरु दक्षिणा[3] को निज पिता से कह अनोखी कीर्ति ली ।
देखो अनोखे चरित कैसे राम के हे तात हैं,
विरवा अहें जो होनवाले होत चिकने पात हैं ।

१– पांचवी वर्ष
२– स्वामी जी के समान शिष्य
३– इस समय (८॥ वर्ष की आयु में) अपने पिता हीरानंद जी से कहा कि घर पर जो भैंस है वह मौलवी साहब को दक्षिणा में दे दीजिए ।

अब तो समय वह आ गया निज जन्मभूमि[1] छोड़ दी,
शिक्षार्थ इंगलिश चल दिये निज वृत्ति उसमें जोड़ दी।
आश्रय मिला अनुकूल ही अति भाग्य वाले राम थे,
वे भगत धन्नाराम हैं जो तात[2] के वर तात[3] थे।

चल बुद्धि तू भी दे बधाई भगत धन्ना राम को,
जिन पालिया बिनु दाम के ही रत्न ऐसे राम को।
बड़ भाग्यशाली तुम सरिस क्या और कोई अन्य हो,
अब क्या कहें हम, भगत जी तुम धन्य हो अति धन्य हो।

चाह थी जो राम को संयोग वे ही मिल गये,
मार्ग उनका एक था युग[4] कार्य झट सिधि हो गये।
पढ़ना वहाँ सत्संग करना भगत धन्ना राम का,
जीवन समय इमि बीतता निज रामतीरथ राम का।

१– अपना जन्म गाँव मुरारी वाला
२– पिता
३– मित्र, प्यारे
४– पढ़ना, सत्संग

ज्यों राम इंगलिश में बढ़े अरु उन्नती करते गये,
त्यों भगत धन्ना राम के प्रिय पात्र नित बनते भये।
चार ही बरसें लगीं गुजरानवाला में उन्हें,
गुजरानवाला से गुजरते देर क्या लगती उन्हें।

०

दे दी परीक्षा अन्त की ऐंट्रैंस पास[1] किया वहाँ,
पुरुषार्थ रहता हैं जहाँ फल सिद्धि भी रहती वहाँ।
अन्त में चलने पड़ा तजने पड़ी वह[2] भूमि भी,
संयोग होता है जहाँ तैयार अवशि वियोग भी।

०

हे लेखनी तू रुक न जाना समय रंग दिखा रहा,
बीतता नित जा रहा आगे नया नित आ रहा।
सो राम के भी समय ने भय रूप धारण कर लिया,
पर राम ने उसको अभय पुरषार्थ बल से कर दिया।

१– १४।। वर्ष की अवस्था में पास किया
२– गुजरान वाला

पाठक चलो अब राम की सोचित दशा भी देख लो,
साथ ही पुरुषार्थ बल अरु धीरता भी पेख लो।
राम के रग-रग भरा अनुराग औ विश्वास था,
आशा न थी फल की उन्हें पर कर्म करना काम था।

खींचते निज ओर थे प्रिय तात[1] उनके राम को,
बाध्य करते थे निरन्तर पुत्र को गृह[2] काम को।
इष्ट उनका द्रव्य था सो पूर्ण होते जब लखा,
तब राम से विपरीत शिक्षा बल न कोई धर रखा।

जैसे लड़े गुरु[3] शिष्य थे उस युद्ध भारत में कभी,
तैसे ये लड़ना पुत्र पितु का देख लो बुध वर सभी।
सौ–सौ कलायें थीं चलीं पर राम हाथ न आ सके,
आशा नदी में पड़ रहे थे थाह वे[4] नहिं पा सके।

१– स्वामी जी के पिता
२– घर का काम
३– अर्जुन तथा द्रोणाचार्य
४– स्वामी जी के पिता

तात स्वारथ वश अड़े थे राम निःस्वारथ अड़े
पितु पुत्र निज निज बस विजय के हित समर में थे खड़े।
अन्त में निःस्वारथ जीता विजय का डंका बजा,
स्वारथ नीचा पड़ गया छिः स्वारथ अब तो तू लजा।

माना नहीं जब राम ने धमकी प्रवल तर इक दई,
द्रव्य विनु कैसे पढ़ो नहिं[1] देय पितु ने यह कही।
मंजूर कर वस राम तो कस कर कमर फिर चल पड़े,
है क्या कठिन संसार में पुरुषार्थ बल पर जो अड़े।

हो गये भरती तुरत लाहौर के कालेज में,
पढ़ने लगे विद्या बहां पुरुषार्थ बल के तेज में।
पाठक लखो यहाँ राम का कोई सहायक था नहीं,
निश्चित ये है कोई न जहां ईश्वर सहायक है वहीं।

१– पिता ने कहा था खर्च नही देंगे

पढ़ने लगे सुख युक्त वे सब खर्च भी चलने लगे,
ढलने लगे दिन रात भी अरु फल सुफल फलने लगे।
प्रथम एफ० ए० की परीक्षा दे सफलता प्राप्त की,
निज छात्रवृति मौसा[1] तथा गुरुदेव[2] ने साहाय दी।

वर्ष शिक्षा दूसरा आरम्भ एफ० ए० हो गया,
लगना निरन्तर अब उसी में ढंग उनका हो गया।
रोगी तथा निर्बल रहे पर घोर श्रम छोड़ा नहीं,
करते रहे नित प्रार्थनायें[3] वस्तु कम होवें नहीं।

हे ईश कर दे मन श्रमी, नित घोर श्रम करता रहे
प्रतिकार्य मेरे को सदा नूतन समय मिलता रहे
वास ऐसा दें हमें एकान्त जो शुभ शान्त हो
ये वस्तु कम होवें तभी जिस दिन कलेवर अन्त हो

१– रघुनाथ मलजी स्वामी जी के मौसा थे
२– भगत धन्नारामजी
३– एकान्तवास, परिश्रमी मन, समय

समये ने पलटा लिया पांसे[1] रहे अब राम के,
कुछ दिवस हीं थे चले जो थे रहे विधि वाम के।
दे दी परीक्षा दूसरी ले ली सफलता राम ने,
नम्बर प्रथम अरु छात्र वृत्ति ली ख्याति पाई नाम ने।

शिक्षा समय आरम्भ बी० ए० प्रथम का भी हो गया,
निज तात का कर्तव्य कुछ दुख बीज आकर बो गया।
राम तो अति विवश थे पर ध्यान पितु रक्खा नही,
फिर राम भी कस ली कमर पग मोड़ कर रक्खा नही।

तात ने जाना जभी अब राम मम सहाय बिन,
हैं लगे शिक्षार्थ अपना चित्त देकर रात दिन।
श्रीमती साध्वी[2] युवा को राम के संग कर दिया,
हार होते समय अपना पूर्ण बल[3] दिखला दिया।

१– दांव

२– स्वामी जी की धर्म पत्नी

३– इससे अधिक क्या कर सकते थे सोचा था गृहस्थी का भार पड़ने पर पढ़ना छोड़ देंगे सो भी आशा पूरी न हुई

पाठ कहीं मत समझ लेना राम अति आपत पड़े
क्या करे आपत्ति उनका जो प्रतिज्ञा पर अड़े
राम निज धुनि में लगे थे मस्त हाथी ज्यों चले
फिर आक फल[1] यह क्या करें लगते चलें गिरते चलें

॰

आश्रम चले इक संग दो[2] पर समय उनका एक था
मार्ग उनके युग रहे पर मार्ग गामी एक था
काम भी यह शूर का है भीरु कायर का नहीं
युग क्या, चहें शत मार्ग हों पुरुषार्थ जहँ जय है वहीं

॰

राम सब सहते गये अरु कार्य निज करते गये
पाते गये वे सफलता आदर्श नित बनते गये
कष्टित हुये अति राम पर ग्रीवा झुकाई नहीं कभी
करकी हथेली पर कपोलों[3] को नहीं रक्खा कभी

१– सांसारिक झगड़े
२– ब्रह्मचर्याश्रमर (विद्यार्थी जीवन), गृहस्था श्रम
३– कभी शंकित होकर नहीं बैठे,

रे हृदय ! अब तू सँभल जा फट न जाना तू कहीं,
हे लेखनी ! चेतन्य रहना गिर न जाना तू कहीं।
हे पाठको ! विगलित न होना थाम लो उर हाथ से,
दुःख लड़ियां राम की मैं लिख रहा निज हाथ से।

~

मैं कभी लिखता न ये यदि आशङ्क[1] होती नहीं,
परिवर्तनीया जगत की यदि रीति इक होती नहीं।
दुःख[2] से डूबे हुए यह शब्द जो मैं लिख रहा,
तो भाग्य मेरे में कभी सुख शब्द लिखना है अहा।

~

समय ऐसा राम पर आया पलट के एक दिन,
तीन पैसे प्रति दिवस से काट डाले तीस दिन।
आहार एकहि श्रम बड़ा कर ईश से नित विनय को,
काटने आया समय, पर काट डाला समय को।

१– आगे सुख की कथा भी लिखूँगा

२– अचानक खर्च हो जाने पर इतना धन बचा था कि तीन पैसे से हर रोज़ गुज़र करनी पड़ी यही ढंग एक महीने तक रहा

इति न इतने पर हुई इक वज्र ही फिर गिर पड़ा,
वज्र गिरने पर कहो तरु उच्च भी कहुं रहे खड़ा।
फेल होना राम का बी० ए० परीक्षा काल में,
बस छेद ही तो कर दिया उस बीर वर की ढाल में।

फेल बी० ए० में हुए अरु क्षात्रवृति जाती रही,
जाती रहीं सब शक्तियाँ इक सांस बस आती रही।
राम अति शोकित हुये व्याकुल हुये साहाय बिन,
बस सूझता फिर कौन है जग में कहो इक ईश विन।

राम को सूझा नहीं कोई वहाँ जब अन्त में,
तब ईश ही पर झुक पड़े रोने लगे एकान्त में।
करते रहे वहु प्रार्थना करुणा भरी प्रभु से वहाँ,
सो राम के शब्दन लिखी इक इक पढ़ो बुधवर यहाँ।

प्रार्थना

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेंव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव ।।

कुन्दन के हम डले हैं जब चाहे तू गला ले,
बावर न हो तुझको तो ले आज आजमा ले ।

जैसी तेरी खुशी हो सब नाच तू नचा ले,
सब छान बीन कर ले हरतौर दिल जमा ले ।

राज़ी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रजा है,
यां यों भी वाह वा है और वो भी वाह वा है ।

या दिल से अब खुश होकर कर हमको प्यार प्यारे,
या चाह तेग़ खेंच ज़ालिम टुकड़े उड़ा हमारे ।

जीता रखे तू हमको या तन से सिर उतारे,
अब राम तेरा आशिक कहता है यों पुकारे ।

राजी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रजा है,
यां यों भी वाह वा है और वो भी वाह वा है ।

जिस द्रोपदी क्रंदन सुना गज की सुनी जिस टेर थी,
प्रहलाद की रक्षा करी क्षण की करीं नहिं देर थी।
ध्रुव को लिया जिन गोद में पदवी अटल दे दी उन्हें,
भगते रहे झट पैर नंगे जब पुकारा है उन्हें।

सोई हुआ हित राम के झट टेर श्रवणन में पड़ी,
फिर देर क्या थी सिद्धि भी कर जोड़ के सम्मुख खड़ी।
भोजन तथा व्यय फीस पुस्तक सब स्वयं ही हो गया,
देता सभी को जो अहै सो राम को भी दे गया।

सब कार्य भी चलने लगे ढलने लगे दिन रैन भी,
पढ़ने लगे नित राम फिर उड़ने लगे सुख चैन भी।
सिंह ज्यों पीछे हटे त्यों चोट करता है कड़ी,
सो राम भी जैसे हटे वैसी सफलता ली बड़ी।

भोजन निवास स्थान का सब भार झंडूमल[1] लिया,
अन्य प्रोफेसर तथा निर्वाह ट्यूशन से किया।
दे दी परीक्षा फिर बी० ए० अधिकार सब लौटा लिए,
नम्बर प्रथम अरु क्षात्रवृत्ति सब ब्याज से चुकवा लिए।

राम ने फिर पग बढ़ा एम० ए० की मन में ठान ली,
मिलती रही इक क्षात्रवृति[2] सो ठीकरी ही जान ली।
राम के यह शब्द थे पद तीसरा लेंगे नहीं,
या तो बनें धर्मोपदेशक या बने शिक्षक कहीं।

पाने लगे शिक्षा निरन्तर राम एम० ए० क्लास की,
भाने लगी नित नित नई शुभ छटा दृश्याकाश[3] की।
देख लो पाठक सुहृद अब आगमन ऋतुराज का,
होने लगा कुछ प्रथम ही से भान उसके साज का।

१– हलवाई थे इन्होंने स्वयं स्वामी जी से कहा था कि आप भोजन साल भर तक मेरे यहाँ कीजिये और अपना मकान भी दिया।

२– २०० पौंड की क्षात्रवृति देकर सिविल सर्विस की परीक्षा के लिए विलायत जाने को कहा गया परन्तु स्वामी जी ने मंजूर नही किया।

३– प्राकृतिक दृश्य

पढ़ते पढ़ाते में तुरत शिक्षा समय भी चल दिया,
आया परीक्षा काल झट ही राम को नव फल दिया।
ले ली सफलता राम ने अति श्रेष्ठतर एम० ए० किया,
धन्य एम० ए० क्लास तुझको राम के संग लग लिया।

शिक्षा समय अरु बालपन जैसा बना सो लिख चुके,
दिल के फफोले कुछ रहे कुछ फूट करके खिल चुके।
अब राम के निज कार्यक्रम की झलक भी इक देख लो,
अविरुद्ध गति वाली सरित की गति सलिल को पेख लो।

प्रथम तो प्राइवेट शिक्षा राम छात्रन को दई
फिर बने द्वितीयाध्यापक वस्तु मन चाही लई।
ढल गया कुछ समय यों ही मिल गई प्रोफेसरी,
राम का जो लक्ष्य था जगदीश ने वो ही करी।

करते रहे प्रोफेसरी अरु भक्ति सरि बहती रही,
मिलती रही नित द्रव्य[1] ज्यों त्यों आदि गति होती रही।
निज कलेवर जानते थे सब कलेवर जगत के,
सब कलेवर जगत के थे निज कलेवर पलट के।

होने लगे व्याख्यान नित बनने लगी संस्था नई,
जो प्रेम धारा एक थी उसकी अनेकों हो गई।
बहतीं रहीं कुछ पृथक भी फिर वे परस्पर जुड़ गईं,
वे भक्ति सरि की प्रेम धारें ज्ञान[2] नद में मिल गईं।

कृष्ण दर्शन लालसा फिर आत्मचिन्तन फिर गई,
ज्यों ही जगत[3] गुरु की उन्हें संगति तनिक सी मिल गई।
मथुरा भ्रमण भी फिर गया वह गिरि गुहाओं जा भरा,
अब भक्ति विगलित चित्त उनका आत्म चिन्तन जा धरा।

१– दान
२– भक्ति विगलित चित्त ज्ञान में बदल गया
३– द्वारिकामठाधीश स्वामी शंकराचार्य

करने लगे अभ्यास नित एकान्त थल रहने लगे,
भरने लगे आनंद मन नव कार्य नित करने लगे।
श्रीमन् विवेकानंद जी का मिल गया सत्संग था,
बस चोट पर ही चोट पड़ने का चला पर संग था।

मानस सरोवर भर गया जब ज्ञान जल से पूर्ण हो,
लहरे उठी आनंद की फिर रुक सके कैसे कहो।
धार भी इक बह चली जो ज्ञान जल की धार थी,
वह "अलिफ" नामक पत्र की हुंकार थी गुंजार थी।

वेग बढ़ता ही गया नित राम के आनन्द का,
त्यों बद भी करता गया इस जगत के छलछंद का।
जगत का मन तो रमाँ[1] में राम का वन में रमाँ[2],
चित्त का चित हेत चिन्तन गिरि शिखाओं जा थमा।

१– लक्ष्मी सुख समृद्धियाँ
२– रम गया

होने लगी तैयारियाँ वन मध्य जाने के लिये,
जगत की समरस्थली में शूर बनने के लिये।
पुत्र पत्नी भी चलीं शुभ[1] शत्रु इनको जानिये,
करलें विजय इन बैरियों से वीर उसको मानिये।

क्या राम पै विद्या नहीं थी ? क्या नहीं धन था रहा ?
पुत्र पत्नी क्या नहीं थे ? क्या नहीं तन था रहा ?
क्या नही पद उच्च था ? संसार भोगन के लिये,
क्या पड़ा संकट बड़ा ? क्या कटु रहे जग के लिए।

क्या नही सब मानते थे ? क्या नही थे जानते ?
क्या नही सब प्रेम करते ! क्या नही मति मानते !
क्या नही वे भक्त थे ? क्या ज्ञान रखते थे नही ?
क्या नही गृह के उन्हें सुख भोग मिलते थे नही ?

१– स्त्री पुत्र शत्रु होते हुये भी ज्ञात नहीं होते बल्कि हितू ज्ञात होते हैं यह भ्रम है।

क्या न इन्द्रिय शक्ति थी क्या इन्द्रियाँ थी ही नहीं ?
क्या विधाता ने उन्हें कुछ वृत्तियाँ दी थीं नहीं ?
क्या राम के मन था नही ? क्या बुद्धि उनके थी नहीं,
जो त्याग सब को बन गये कुछ समझ में आती नहीं।

०

पाठक ! सुनो समझो तनक यह सब विभूतीं[1] जो कहीं,
सो राम के भी पास थीं अन चाहती[2] रहती रहीं।
पर राम ने तज दीं सबै कटु जान के हत्तार सीं,
उस वीर वर ने वीर बन झट ही सभी लत्ताड़ दीं।

०

जो सत्य पथ में विघ्न डालें छोड़ दे झट ही उन्हें,
चलना चहें जो सत्य पथ वे तुरत ही तज दें इन्हें[3]।
हैं अवशि ये विघ्न कर सन्देह इसमें है नही,
क्या चूकता निज स्वार्थ से जग में कहो कोई कहीं।

१– ऊपर कहे हुए सकल ऐश्वर्य
२– राम को किसी पदार्थ की इच्छा नहीं थी
३– इन्द्रियों के सम्पूर्ण विषयों को

त्यागा जिन्होंने सुजन उनकी कीर्ति तो देखो सही,
हो गये कृतकृत्य वे, कृतकृत्य सब कर दी मही।
अब अधिक हम क्या कहें बस सुजन मन में समझ लें,
इन क्षणस्थायी सुखों से चिरस्थायी बदल लें।

राम ने डेरा जमाया रम्य बन में मुदित हो,
ज्यों कलाधर[1] श्याम घन में पूर्ण होकर उदित हो।
चलने लगा वानप्रथाश्रम पुत्र पत्नी साथ में,
बस ले लिया निज इन्द्रियों को राम ने निज हाथ में।

आ गया शुभ दिन सभी जब पत्र पितु को लिख दिया,
"बिक गया अब निज कलेवर प्रभु को बदले ले लिया।
सोच की नहिं बात है आयुस जो हो होगा वही,
जो चाहिये प्रभु ही से लो देते हमें देंगे वही।

१- चन्द्रमा

अस्मिन् समय नारायण[1] का भ्रमूमल सारा खो गया,
राम पद पाथोज पर मन मत्त मधुकर हो गये।
नित साथ ही रहने लगे कृतकृत्य तन करने लगे,
फिरने लगे नित मस्त हो आनंद मन भरने लगे।

चल दिये हरिद्वार को, हरिद्वार से ऋषिकेश को,
ऋषिकेश से पहुँचे तपोवन धन लुटा सब साथ को।
ब्रह्मपुरि[2] मंदिर मिला बस ब्रह्मपुरि ही मिल गई,
कलकल निनादिनि गंग धुनि में राम की धुनि मिल गई।

आसन जमाया राम ने आसन से खुद भी जम गये,
चित्त को एकाग्र कर के आत्मचिन्तन लग गये।
उन्मत्त होकर राम अति अरु छोड़ तन के ध्यास[3] को,
अन्तर मुखी बस हो रहे कर तीव्रतर अभ्यास को।

१– श्री नारायण स्वामी
२– ऋषिकेश से तपोभूमि पर ८ मील के अन्तर पर यह स्थान है
३– स्मर्ण, याद

सिर पैर तन नंगे किये उन्मत्त आत्मतरंग में,
राम पग रख ही दिया इस विश्व विजयी जग[1] में।
दुष्ट जयद्रथ वधन को पार्थ प्रतिज्ञा ज्यों करी,
त्यौं राम ने निज विजय के हित की प्रतिज्ञा अति कड़ी।

राम ने मन में कहा तन की रही यदि गंध भी,
तो गंग के अर्पण कलेवर आज कर दूँ अन्त भी।
आज यदि जाना नहीं मैं कौन हूँ इस क्षेत्र में,
तो खायँगी मछली कलेवर गंग तेरे क्षेत्र में।

कीने अनेकों यत्न पर संसार व्यूह[2] न भिद सका,
राम का जो इष्ट था उनको नहीं जब मिल सका।
निज वचन अनुसार ही तन गंग अर्पण कर दिया,
जो दृश्य अर्जुन का हुआ था दृश्य सन्मुख कर दिया।

१– भव सागर रूपी मैदान
२– संसार रूपी चक्रव्यूह

वीर ही करते प्रतिज्ञा वीर ही का काम है,
भीरु कायर तो करे निज नाम ही बदनाम है।
सुर नर दिशय जल अग्नि वायु संग देते वीर का,
भरि अंक लेते कर पकड़, उस वीर वर नर धीर का।

हा ! मातृभूमि वसुंधरे वे लाल तेरे कहँ गये,
जिन उच्च सिर तेरा किया नररत्न वे अब कहँ गये।
भगवान अब तो करि कृपा तुम काल गति को फेर दो,
छीने हुये पूर्वज हमारे नाथ फिर के फेर दो।

चल लेखनी रोवे कहा, रोयें तो रोना बहुत है,
पर चरित भी तो राम का लिखना तुझे अब बहुत है।
ज्यों राम कूदे गंग में त्यों गंग गोदी ले लिया,
चट बहा कर राम को चट्टान पर बैठा दिया।

ज्यों संभाला राम ने आपे[1] को आपा[2] बल दिया,
खुद गई सारी खुदी मैं तूने मैं-मैं कर दिया।
रह गये अब राम केवल इष्ट था सो पा लिया,
दे दिया जो सिर प्रथम सरदार[3] पद भी पा लिया।

राम ने फिर लौट कर निज कार्य कुछ दिन तक किया,
तन रहा उनका वही, मन वेग औरहि कर लिया।
अपना पराया छिप गया घर द्वार भी कुछ नहिं रहा,
मिलता जो वेतन था उन्हें सो तुरत बट जाता रहा।

द्रव्य व्यय होता अधिक कुछ रोक उसको थी नही,
पर रामदीन हुये नही चिन्ता कभी उन की नही।
भोजन अभावाभाव[4] में उपवास ही करते रहे,
न्यूनता में तेल की सड़कों पै जा पढ़ते रहे।

१— अपने शरीर को
२— अहंकार
३— उच्च पद
४— कमी

भोजन कराना दूसरों को राम को अति चाव था,
अतिरिक्त इसके पुस्तकों के देखने का भाव था।
गणित तत्वज्ञान पर छपतीं नई जो पुस्तकें,
तुरत अध्ययनार्थं वे जाती मगाई पुस्तकें।

पाठक ! कहो मत समझ लेना दीन हीन रहे बड़े,
इस बाहरी ही दीनता से राम सिंहासन चढ़े।
आनंद जो था राम को कहना उसे अवगेह[1] है,
सम्राट को भी हो कहीं इसमें हमें संदेह है।

राम की मस्ती अजब थी मस्त उनका ढंग था,
गणित के भी प्रश्न में वेदान्त ही का रंग[2] था।
प्रश्न समझाते गणित छात्रगणों के सामने,
केन्द्रत्व वेदान्ती झलक देखी सबों में राम ने।

१— कठिन

२— सवाल समझाने में वेदान्त सिद्धि करने लगते थे

इस भाव से विद्यार्थीगण अति ही प्रभावित हो गये,
राम पद्म पराग पर वे मस्त मधुकर हो गये।
दृश्य यह अवलोक कर ईर्षा ने अवसर पा लिया,
मन्दमति[1] स्वार्थी जनों ने पूर्ण कार्य बना लिया।

बोले वचन वे राम से बहु गूढ़ भेदों को लिये,
स्थान जिस पर आप है वे[2] अहें आने के लिये।
अन्यत्र करिये यत्न अब बेकार नहीं बैठे रहो,
हा स्वार्थ ! क्या करतूत तेरी धन्य-धन्य अहो-अहो।

बात यह[3] कितनी बड़ी थी सर्व त्यागी राम को,
लुटती जो सम्पत्ति स्वर्ग की पाते न तऊ अविराम को।
तृण सदृश जिस दृष्टि में थी विश्व की वसुधा सभी,
तुच्छ वेतन से कहो क्या हो मलिन मन वह कभी।

१— कालेज के मंद मति मिशनरी तथा स्वार्थी प्रोफेसर
२— जिनकी जगह पर स्वामी जी थे
३— पीछे लिखी है

अलग होते ही तुरत स्थान उनको मिल-गया,
ओरियन्टल[1] में उन्हें प्रिय कार्य[2] अपना मिल गया।
गणित और वेदान्त ही बस राम को सौंपा गया,
खिलता हुआ हृद सुमन उनका और भी फिर खिल गया।

इस काल ही गुरुदेव ने इक पत्र भेजा राम को,
क्षणिक सुख का कण दिखाया चिर सुखी सुख धाम को।
पुत्र पत्नी ने जना है पत्र में यह लिख दिया,
उत्तर दिया जो राम ने वैसा ही मैंने लिख[3] दिया।

१– ओरियन्टल कालेज
२– अध्यापकी (प्रोफेसरी) तिस पर गणित और वेदान्त पढ़ाना
३– आगे लिखेंगे

गुरुदेव (धन्नाराम जी) के पत्र का उत्तर

आपके पत्र से मालूम हुआ कि पुत्र उत्पन्न हुआ है समुद्र में एक नदी आन पड़े तो कुछ ज्यादती नही हो जाती और नदी कोई न गिरे तो कुछ कमी नही हो जाती सूर्य का जहाँ प्रकाश हो वहाँ एक दीपक रक्खा गया तो क्या और न रक्खा गया तो क्या जो ठीक उचित है वह स्वतः पड़ा होगा किसी प्रकार का शौक तथा चिन्ता हम क्यों करें यह शोक चिन्ता करना ही अनुचित है हम ज्ञानी नही ज्ञान स्वयम् हैं देह से सम्बन्ध ही कुछ नही देह और उसके सम्बन्धी जाने और उनकी प्रारब्ध जानें हमें क्या ?

मनो बुद्धयहंकार चित्तानिनाहं,
नचश्रोत्र जिह्वे न च घ्राणनेत्रे ।
न च व्योम भूमिर्नंतेजो न वायुः,
चिदानंद रूपः शिवोऽहं शिवोऽहं ॥

राम अति ही मग्न थे इस काल ब्रह्मानंद में,
सुत नाम "ब्रह्मानंद ही रक्खा गया आनंद में।
धन्य माता धनि पिता धनि-धनि ब्रह्मानंद हो,
चिर जियो शुभ नामधारी सत्य ब्रह्मानंद हो।

इस वर्ष ग्रीष्म छुट्टियों में अमरनाथ चले गये,
मार्ग में कश्मीर आदिक दृश्य देख नये–नये।
इस काल जो आनंद था सो जानते होंगे वही,
सो दशा हमसे भला जावे कहो कैसे कही।

एकान्त वातावरण से वे लौट कर फिर आ गये,
आनंद घन सर्वत्र ही सारे नगर में छा गये।
राम की हृद शुद्धता की दुन्दुभी सी बज गई,
बज के वहीं नहिं रह गई अन्यत्र को भी सज गई।

पाठक ? चलो आगे चलें अवदृश्य अद्भुत देख लो,
साथ ही गंभीरता वीरत्व का मग पेख लो।
जान लो निज हृदय से बस दिव्य अवसर है यही,
प्राप्ति हो जग में जिसे नर योनि धन्य वही–वही।

काल गति से लाल[1] पिंजर[2] बंद था जो हो गया,
अबउसी पिंजड़े में उसका वास दुष्कर हो गया।
शक्ति-अपनी जान ली पिंजड़े को तोड़ा चल दिया,
बंद था जिन तीलियों[3] में पांव से झट मल दिया।

दश हाथ की ही भूमि में नर नारियों के साथ में,
रहना असंभव हो गया अब दूसरों के हाथ में।
छोड़ दी झट नौकरी चट राम वन को चल दिये,
कुछ भक्त सज्जन पुत्र पत्नी संग उनके चल दिये।

आँसू भरे विद्यार्थीगण सब गान मंडल को लिये,
उत्सव मनाते गीत गाते राम के संग हो लिये।
दर्शक अनेकों संग थे गाऊँ तक मैं कथा,
शोक हा ! केवल यही सब थे वहाँ पर "मैं न था"।

१— संसार
२— स्वामी जी
३— सांसारिक बंधन

"मैं न था" ऐं क्या कहा यह क्या हुआ जो तन न था,
राम थे मुझमें रमे कैसे भला फिर मैं न था।
चल लेखनी तू भ्रमति क्यों अज्ञान गाथा छोड़ दे,
लिख दे विदाई राम की तू कान सबके खोल दे।

शब्द तो मिलते नहीं बहु खोजने से भी कही,
इससे विदाई राम की जाती कही हमसे नहीं।
मौन वाणी ने लिया बोलो कहा अब कीजिये,
नायक हमारे राम के जो शब्द थे सुन लीजिये।

विदाई

अलविदा मेरी रियाज़ी अलविदा, अलविदा ऐ प्यारी रावी अलविदा।

अलविदा ऐ अहलेखाना अलविदा, अलविदा मासूमे वादां अलविदा।

अलविदा ऐ दोस्तों दुश्मन अलविदा, अलविदा ऐ शीत उष्ण अलविदा।

अलविदा ऐ कुतुवो तदरीस अलविदा, अलविदा ऐ खुवसो तफ़दीश अलविदा।

अलविदा ऐ दिल खुदा ले अलविदा, अलविदा राम अलविदा ऐ अलविदा।

यारो वतन से हम गये हमसे वतन गया;
नकशा हमारे रहने का जंगल में बन गया।
जीने का न अन्दोह न मरने का जरा गम;
यकसा है उन्हें ज़िंदगी और मौत का आलम।
वाकिफ़ न बरस से न महीने से इक दम,
शब की न मुसीबत न कहीं रोज़ का मातम।
"दिन रात घड़ी पहर महो साल में खुश है।
पूरे हैं वही मर्द जो हर हाल में खुश हैं।
कुछ उनको तलब घर की न बाहर से उन्हें काम;
तकिया की न ख्वाहिश है न विस्तर उन्हें काम।
'महलों की हवस दिल में न मंदिर से उन्हें काम;
मुफलिस से न मतलब न तवंगर से उन्हें काम।
"मैदान में बाज़ार में चौपाड़ में खुश हैं,
पूरे हैं वही मर्द जो हर हाल में खुश हैं।"

यों बिदाई दे सबै हरिद्वार को फिर चल दिया,
मार्ग बद्रीनाथ का फिर झट वहाँ से ले लिया।
कुछ सुजन लौटे वहाँ से साथ कुछ रहते रहे,
कष्ट शारीरिक हुआ जो सो सभी सहते रहे।

संग में जो द्रव्य भूषण वस्त्र जिसके पास थे,
सो राम ने फिकवा दिये अब सभी वे आश थे।
आज्ञा दई सब को वहाँ अब आत्म चिन्तन रत रहो,
आश तज कर ईश पर विश्वास ही बस कर रहो।

स्वीकार कर आदेश को सब आत्म चिन्तन लग गये,
आये महाशय[1] इक वहाँ परबंध[2] सारा कर गये।
इक दिन निशा को राम ने सोते हुए सब तज दिये,
केवल अकेले उत्तराकाशी[3] भ्रमण को चल दिये।

१– ऋषीकेश के कलकत्ता क्षेत्र के मैनेजर
२– खाने पीने व वस्त्रादि
३– उत्तर काशी

साध्वी सती के चित्त पर इक चोट गहरी लग गई,
यद्यपि उन्हें थी फिर वह मूर्ति आकर मिल गई।
आज्ञा लई उन राम से घर लौटकर वे आ गई,
राम की भी विघ्न बाधायें स्वयं कट गई।

०

अन्तःकरण पट रँग गया जब ज्ञान रंग से पूर्ण हो,
ससार विषयक वासनाओं से नये उत्तीर्ण हो।
बस देर क्या थी तुरत ही नापित[1] वहाँ पर आ गया,
भद्र करवाया तुरत अति दिव्य अवसर आ गया।

०

श्रीजाली के नीर में होके खड़े तब राम ने,
सूर्य को साक्षी किया निज कार्य के हित राम ने।
लै जनेऊ कर युगों में गंग अर्पण कर दिया,
अर्पण किया सर्वस्व ही सन्यास केवल ले लिया।

१- नाई

जो ज्ञान रंग भीतर भरा, थी झलक बाहर आ रही,
झलक में मिलि वस्त्र गति गैरिक[1] छटा थी ला रही।
ज्ञात क्या गेरू रंगे या ज्ञात रंग में थे रंगे,
बुद्धि चकराती यहाँ जाने वही जिसने रंगे।

भागीरथी से निकलकर जब वस्त्र थे धारण किये,
कैसी मनोहर मूर्ति थी जाने वही दर्शन किये।
सन्यास लेने की सुगन्धित सूचना फैली जभी,
नर नारियों के वृन्द बस भवरे बने झट ही सभी।

आने लगे बहु नारि नर उपदेश नित होने लगे,
अन्तःकरण के पटल को अति स्वच्छकर धोने लगे।
राम ने षट मास ही रक्खा वहाँ पर देह को,
नित्य बरसाया वहाँ पर अमिप इसके मेह को।

१– गेरूकी

अत्यन्त गमनागमन से एकान्त जब नहिं रह गया,
एकान्त प्रिय तब राम का अन्यत्र चित भी चल गया।
चुपचाप चल कर एक दिन प्रस्थान लंबा कर दिया,
गंगोत्तरी यमुनोत्तरी जाना सुनिश्चित कर लिया।

चलते हुए पहुँचे वहाँ यमुनोत्तरी के अंक में,
इक मास भर रक्खा उन्हें यमुनोत्तरी ने अंक[1] में।
पश्चात ऊपर चढ़ गये वे मेरु[2] पर्वत पर गये,
आसन जमाया कुछ दिवस मन मस्त हो रहते रहे।

आनंद जो था मेरु पर सो ज्ञात होगा बस उन्हें;
एकान्त सुख का स्वाद जो सो ज्ञात होगा बस उन्हें।
तो भी जहाँ तक लिख सके सो पत्र में इक था लिखा,
वह पत्र ही पाठक पढ़ो जाता यहाँ पर है लिखा।

– गोद, क्षेत्र

२– सुमेरु पर्वत

पत्र

इस वलंदी पर मास की दाल नही गलती न दुनियाँ की ही दाल गलती है निहायत गर्म-गर्म चश्मासार (अति उष्ण श्रोत) कुदरती लालाजार (प्राकृतिक दृश्य) चमकदार चांदी को शर्माने वालें सफेद दुपट्टे (यमुना के जल पर झाग फेन) और उनके नीचे आकाश की रंगत को लजाने वाली यमुना रानी का बात बात में कश्मीर को मात करता है।

आवसार (झरने) तरंगे वे खुदी में निजानंद में मग्न हुये नृत्य कर रहे हैं यनुना रानी साज़ बजा रही है राम शाहं-शाह गा रहा है। दीवानगी को दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की है दीवाना हुये वसस्त वाला हाल है कातिले अंसरी (शरीर) का कुछ पता नही खुराक फलाहार जो यमुना रानी अपने हाथ से पका देती है अर्थात् गर्म कुण्ड में खुद व खुद तैयार कर देती हैं स्नान कभी-कभी सौ-सौ फीट की बुलन्दी से गिरने वाले आवशारों के नीचे स्नान की मौज लूटी जाती है कभी शदियों की जमी हुई बर्फ से ताजा-ताजा निकल कर जो यमुना जी आती हैं उसमें स्नान का लुत्फ उठाया जाता है और कभी कुण्डों के तत्ते पानी में शाहंशाह गुसल फरमाते हैं चलना फिरना बिल्कुल नंगे बदन से सब जगह होता है।

–राम शाहंशाह

मेरु से आये उतर गंगोत्तरी को फिर गये,
दुर्गम भयानक वर्फ मय निज मार्ग निर्मित[1] कर नये।
आसन रहा कुछ दिवस ही गंगोत्तरी के क्षेत्र में,
जो दृश्य देखें हों वहाँ होंगे उन्हीं के नेत्र में।

फिरते हुये मन मस्त थे निज लगनि में लग्न थे,
सिर पैर से वे नग्न थे पर वित्त से नहिं मग्न[2] थे।
इक धौत्र[3] वस्त्रहि धारते इक वस्त्रधारी थे बने,
चिन्ता कलेवर थी नही निज रूपता में थे सने।

यों पर्यटन करते हुये फिर बद्रिकाश्रम आ गये,
कुछ दिवस उस स्थान पर आनंद घन थे छा गये।
होके निमंत्रित राम को मथुरापुरी आने पड़ा,
धर्मी महोत्सव के सभापति भी यहाँ बनने पड़ा।

१— जिधर सीव में आया चल देते थे

२— रूखे, बिगड़े हुये

३— धोती

भाषण हुआ गंभीर अति–अति उच्च जिसके भाव थे,
दर्शन तथा भाषण श्रवण से नारि नर मन चाव थे।
कृतकृत्य कर मथुरा नगर[1] को राम अतिह्लाद में,
प्रस्थान कर अति शीघ्र ही गये पहुँच फैजाबाद में।

राम ज्यों पहुँचे वहाँ आनंद ही त्यों छा गया,
छा जाय क्यों आनंद नहिं आनंद ही जब आ गया।
राम की मन मोहनी वाणी खुली भाषण हुआ,
सर्व जन चित भाव में परि प्रेम से पूरित हुआ।

इस्लाम मजहब के महाशय मौलवी मुर्तजली,
शास्त्रार्थ करने राम से उनकी प्रबल इच्छा चली।
आये वहाँ तैयार हो ज्यों राम के सन्मुख हुये,
आश्चर्य वे मन के विरोधाभाव जाने क्या हुये।

१– प्रसन्नता

दर्शन किये ज्यों राम के प्रेमाश्रुयों बहने लगे,
किरणों पड़ें ज्यों सूर्य की[1] झट मणि द्रवित होने लगे।
कैसा विरोधाभाव औ कैसी वहाँ विपरीतता,
है जहाँ कण कण से भी इक प्रेममय शुभएकता।

जिस दृष्टि में सब आत्ममय अरु आत्म सब मय हो रहा,
जो विश्व विजयी प्रेम का है बीज जग में बो रहा।
क्या कभी उसके निकट भी द्वैत भाव खड़ा रहे,
कैसे कहें कूड़ा कभी जलधार मध्य पड़ा रहे।

संयोग अब शुभ आ गया टिहरी नृपति महराज का,
या लुप्त होने का समय भ्रम के कटक के साज का।
हो गये दर्शन अचानक मिल गया सत्संग भी,
बस रह गया संशय नहीं मन के पटल में एक भी।

१– सूर्यकान्तामणि

आह्लाद हो कहने लगे धनि धन्य स्वामी धन्य हो,
क्या ईश के अस्तित्व के अतिरिक्त[1] कोई अन्य हो ?
करिये कृपा ऐसी प्रभो सत्संग कुछ मिलता रहे,
हो जायेंगे हम मनुज भी दर्शन अगर मिलता रहे।

कुछ दिवस बीते ही वहाँ टिहरी नृपति के पार्श्व[2] में,
उसरम्य भूमि सुकांति मय हिमराज के ही पार्श्व में।
पर समय अपना नियम क्या कब छोड़ सकता है भला,
जैसी प्रगति[3] रहती सदा वह ठीक वैसा ही चला।

होता कभी अनुकूल है प्रतिकूलता लाता कभी,
क्षण में वही रोता खड़ा आनन्द में जो था अभी।
सूरज चमकता है जहाँ तम घोर भी होता वहीं,
आशा यही फिर सूर्य किरणें भी कभी पड़ती वहीं।

१- टिहरीनृपति कुछ नास्तिक से थे स्वामी जी के उपदेश से आस्तिक हुये
२- पास
३- गति, चाल

जो उषा[1] काल था या जन्म भूमि कहें सही,
सो राम रूपी सूर्य की थी मातृ भूमि वही रही।
पर है निकलता भानु क्या स्थिर वहीं रहता सदा,
करता प्रकाशित दिशि विदिश निज शुभ छटा से सर्वदा।

ठीक वैसा ही हुआ सब साज ही तो सज गया,
जापान[2] जाने के लिये संयोग भी इक मिल गया।
सब धर्म परिषद की सभा की सूचना पढ़ नृपति ने,
तत्काल आकर के कही सो राम से भी नृपति ने।

सम्मति परस्पर हो गई स्वीकार जाना कर लिया,
बस देर क्या थी नृपति ने सामान भी सब कर दिया।
श्री गणेश किया यहाँ से घूमते फिरते हुये,
मिलते हुये निज प्रेमियों से प्रेम बरसाते हुये।

१– सूर्य निकलने का स्थान (भारतवर्ष) स्वामी जी यहीं जन्मे

२– टिहरी महाराज ने समाचार पत्र में पढ़ा कि जापान में धर्म महासम्मेलन होगा इसी कारण उन्होंने स्वामी जी को तैयार किया।

हे मातृ भूमि वसुन्धरे तू धन्य है अति धन्य है,
संसार में वीर प्रसू[1] तुझ सी न कोई अन्य है।
गोद खाली है नहीं तेरी सपूतों से अभी,
अगणित रहें तारे जहाँ रहता अवशि इक चन्द्र भी।

१

हे जननि तू मत सोचना है सुत वियोग कि हो रहा,
ये पुत्र जनने का तुझे बस श्रेय[2] ही है मिल रहा।
है नैन तारा जा रहा तब नाम करने के लिये,
मातु के प्रति कर्म अपना पूर्ण करने के लिये।

२

पाठक वही सुत धन्य है जो मातु गोद सफल करे,
अन्यथा संसार में बहु नित्य हो होकर मरें।
केवल हुये बस भार ही वे मातु हित नौ मास को,
हा कुसुत यों होते न जो पाती न तो उपहास को।

१– वीर पुत्र उत्पन्न करने वाली
२– बड़प्पन

बस हो चुका ऐ लेखनी यह विषय यहाँ ही छोड़ दे,
उन राम के अब चरित लिखने में तनिक मन जोड़ दे।

चढ़ कर चले जलयान[1] पर हे मातु ! तेरे लाल वे,
धनि मातु तू ही धन्य है धनि धन्य तेरे लाल वे।

मार्ग में जाते हुये अति मस्त थे आनन्द में,
मिल रहा सुख सिन्धु था निज बंधु ही जल सिन्धु में।
गाते हुये मस्ती भरे बहु शब्द थे जलयान में,
होते कभी थे मस्त वे निज रूप के ही ध्यान में।

१– जहाज

जहाज़ पर मस्ती के शब्द

यह सैर क्या है अजब अनोखा कि राम मुझमें मैं राम में हूँ,
बगैर सूरत अजब है जल्वा कि राम मुझमें मैं राम में हूँ।
मुरक्क़ाय–हुस्नो-इश्क हूँ मैं मुझी में राज़ो नियाज़ सब हैं,
हूं अपनी सूरत पै आप शैदा कि राम मुझमें मैं राम में हूँ।
ज़माना आईना राम का है हर एक सूरत से है वह पैदा,
जो चश्में हकवीं खुलीं तो देखा कि राम मुझमें मैं राम में हूँ।
वह मुझसे हर रंग में मिला है कि गुलसे बू भी कभी जुदा है,
हवावो–दरिया का है तमाशा कि राम मुझमें मैं राम में हूँ।
सबब बताऊँ मैं वज्द का क्या है क्या जो दर परदा देखता हूँ,
सदा यह हरशाज़ से है पैदा कि राम मुझमें मैं राम में हूँ।
बसा है दिल में मेरे वह दिलवर है आइना में खुद आइनागर,
अजब तहय्यर हुआ ये कैसा कि राम मुझमें मैं राम में हूँ।
मुक़ाम पूछो तो लामकां था न राम ही था न मैं वहां था,
लिया जो करवट तो होश आया कि राम मुझमें मैं राम में हूँ।
अलल तवातर है पाक जलवा कि दिल बना तूरे वर्क सीना,
तड़प के दिल यूं पुकार उठा कि राम मुझमें मैं राम में हूँ।
जहाज़ दरिया में और दरिया जहाज़ में भी तो देखिये आज,
यह जिस्म किश्ती है राम दरिया कि राम मुझमें मैं राम नें हूँ।

पहुँचा निकट जापान के जलयान जिसमें राम थे,
देखा वहाँ स्वागतक जन श्रद्धा सहित अभिराम थे ।
भरि अंक भेंटे राम ने श्रद्धा सहित वे भी मिले,
सूखे हुये वे मन सुमन प्रिय दर्श से सबके खिले ।

ले गये आदर सहित स्थान अपने पर उन्हें,
दश आठ दिन श्रद्धा सहित रक्खा वहाँ पर ही उन्हें ।
फिर चल दिये टोक्यो[1] गये अरु भेंट पूरन से हुई,
जिस अर्थ से पहुँचे वहां वह बात भी झूठी हुई ।

कालिज तथा नित किलब में व्याख्यान नित होते रहे,
जापानियों के मन सदा निज मलिनता धोते रहे ।
आज्ञा दई प्रिय पूर्न को संसार की सेवा करो,[2]
घूम कर वेदान्त ही के भाव सबके मन भरो ।

१— जापान की राजधानी
२— सन्यास लेने की आज्ञा हुई

प्रस्थान अमरीका किया यों घूमते फिरते हुये,
जलयान पर जाते हुये आनंद बरसाते हुये।
साथ भ्रत्रे का रहा आनंद में पहुँचे वहाँ,
बहु लोग मिलने आ गये आनंद बरसाया वहाँ।

कार्य अमरीका किया कैसे यहाँ पर लिख सके,
चरित बहु स्थान कम सागर न गागर भर सके।
तो यहाँ आभास उसका दे रहा हूँ मित्रवर,
आभास ही से पूर्णता हैं जान लेते विज्ञवर।

घूमें विचित्र प्रदेश में नित नित नये स्थान पर,
भारत तुझे रक्खा उन्होंने ठीक अपनी आन पर[1]।
दिखला दिया प्रत्यक्ष सबको मान अपनी भूमिका,
है देख लो अब भी चमकता भानु भारत भूमिका।

१– जैसा भारत का बड़प्पन था वैसा ही सिद्ध कर दिया।

उपदेश नित होते रहे श्रद्धा नई बढ़ती गई,
त्यों राम की भी मनमुखी कलिका नवल खिलती गई।
उपदेश होने के लिये शिक्षा[1] भवन था बन गया,
इक राम के चारित्र्य से सब साज ही था ठन गया।

-

आश्चर्य अमरीका रहा इस बात का चहुं ओर था,
ऐनक तथा इक धौत्र वस्त्रहिं राम के बस पास था।
थे सभापति[2] जो रहे उस काल में सर्वोच्च थे,
दर्शन किये थे राम के अरु प्रेम में वे मुग्ध थे।

-

प्रतिद्वन्दियों से भी कभी था सामना होता रहा,
प्रतिवाद दर्शन मात्र से ही झट हवा होता रहा।
स्थान जिसके योग्य होता वह वहीं है ठहरता,
पात्र हो जैसा जहाँ वैसा वहाँ है ठहरता।

१- हरमेटिक ब्रदर हुड
२- प्रेसीडेंट अमरीका

1

बहस करने राम से विलमैन जिनका नाम था,
थीं चलीं अरु विषय उनका घोर नास्तिक वाद था।
पर मूर्ति दर्शन ज्यों किये माइलार्ड वोलीं झट वहीं,
सब ठाठ छोड़ा तुरत ही आजन्म सन्यासिन रहीं।

२

चहुं ओर अमरीका मची थी धूम उनकी ख्याति की,
थी नहीं परवा उन्हें कछु जाति की अरु पांति की।
पत्र क्या अरु यंत्र क्या राजा तथा परजा सभी,
कहते गुणावलि राम की धनि धन्य करते थे सभी।

३

कर्ण पुट खोलो तनिक ऐ भूमि भारत वासियो,
कीर्ति सुन लो राम की ऐ भूमि भारत वासियो।
रहते जहां तुम ही सभी इस खानि हो का लाल था,
मोल नहिं जाँचा गया ऐसा अमोलक लाल था।

१– विलमेन नाम की एक अमरीकन नास्तिक लेडी थी

ऐ मिश्र तू भी आज अपनी पूर्ण कर ले आश को,
दृग खोलकर तू देखले अब पूर्व दिशि[1] आकाश को।
भानु होगा उदय ले अब क्षितिज का रंग लाल है,
आता तुझे है सफल करने आज भारत लाल है।

६

कोकिला जो कूकती थी नव रसालों पर अभी,
सो शुष्क बागों को चली अब देख लो बुधवर सभी।
अतएव अमरीका तजी अरु मिश्र[2] में जाकर डटे,
ले मिश्र तेरे भी सभी दुख द्वन्द के बंधन कटे।

७

खिल रहा जो सुमन था अरु थी मधुरिमा भर रही,
सो बाग भारत में कमी थी इक वही कलिका रही।
व्याख्यान मसजिद में हुआ मन मधुकरों के मुग्ध थे,
प्रेम विह्वल हो रहे थे कंठ भी अवरुद्ध थे।

१– सूर्य निकलने का स्थान जहाँ आकाश और पृथ्वी मिले हुये से प्रतीत होते हैं

२– मिश्र देश

करिके सुगंधित मिश्र को प्रत्यागमन[1] फिर कर दिया,
भूमि भारत जननि ने आकर्ष उनको कर लिया ।
मातृ नेह विचित्र है खींचे बिना रहता नहीं,
जीवन सुधा वह दुग्ध रग उबले बिना रहता नहीं ।

हे मातृ भूमि ! वसुन्धरे अंचल[2] तु आज पसार दे,
देख आता नयन तारा नयन खोल निहार ले ।
आ गया वह आ गया ले आ गया वह आ गया,
भारत सुअन[3] रण विजय करके आ गया वह आ गया ।

जलयान से उतरे प्रथम वे भूमि भारत बम्बई,
रहते रहे वे मस्त होकर बम्बई में दिन कई ।
अनुभव दिखाये नित नये जो थे विदेशों में लखे,
फल चखाये ज्ञान के जो थे विदेशों में चखे ।

१– वापिस आना
२– गोद
३– पुत्र

चल कर वहाँ से तुरत ही मथुरा पुरी फिर आ गये,
मथुरा पुरी के भी पपीहे बूंद घन की पा गये।
आग्रह किया प्रेमी जनों ने संघ[1] निर्मित कीजिये,
उत्तर दिया जो राम ने पाठक सुहृद सुन लीजिये।

सब संघ मेरे संघ हैं सब संघ का मैं हूँ तथा,
वायु से खाली नहीं है थान कोई भी यथा।
सब धर्म मेरे धर्म हैं सब वे मुझी से हैं बने,
मेरे हृदय के प्रेम रस में वे सभी जानों सने।

कह दो सबै अति प्रेम से है राम सब का सर्वदा,
सब में करेगा काम वह अरु है किसी से नहिं जुदा।
यदि करे विपरीतता कोइ मैं कहूँ स्वागत उसे,
यदि मिले नहिं राम से तो मैं मिलाऊँगा उसे।

१- संस्था

भाव थे यह राम के अरु विश्व व्यापी प्रेम था,
कर्तापने का भाव सारा मूल ही से नाश था।
ऐ भूमि भारत वासियों ये शब्द हृदयंगम करो,
स्वर्णाक्षरों में हृद पटल पर ये अवशि अङ्कित करो।

यों ही विचरते राम फिर लखनऊ तथा पुस्कर गये,
पट[1] शिष्य उनके भी वहीं आ, राम से थे मिल गये।
आयुस मिली उनको तुरत अफगान[2] जाने के लिए,
स्वयं दारिजलिंग को जलवायु पाने के लिए।

ठहरे वहां कुछ दिवस ही बंगाल फिर होते हुये,
आ गये यू० पी० तुरत कृतकृत्यता पाते हुये।
पश्चात फिर आसन जमाया राम ने हरिद्वार में,
रोगी रहे, आया नही विघ्न उनके काम में।

१– श्रीनारायण स्वामी
२– अफगानिस्तान आदि

राम का जर्जर[1] कलेवर हो गया उस समय था,
उठना उन्हें लेटे हुये से हो गया अति कठिन था।
देखा नही उनको किसी ने व्यथित व्याकुल था कभी,
राम को चिन्ता नही थी रोग की किञ्चित कभी।

स्वस्थ होते ही तुरत एकान्त को फिर चल दिये,
व्यास आश्रम पर नियत विश्राम अपने कर दिये।
पाणिन[2] तथा वेदाध्ययन फिर राम थे करने लगे,
उसके अनोखे भाव भी हृद्धाम में भरने लगे।

समय ने पलटा लिया पतझड़ निकट जब आ गया,
तजने पड़ा स्थान वह भी समय ऐसा आ गया।
चल दिये झट ही वहाँ से घूमते फिरते हुये,
आश्रम वशिष्ठाश्रम मिला मन मोद अति भरते हुये।

१— कमजोर
२— पाणिन व्याकरण

राम जब रहने लगे बहु भक्त जन आने लगे,
राम बेदाध्ययन से आनंद बहु पाने लगे।
पर कलेवर की दशा कुछ ठीक नहिं फिर हो सकी,
ऐसी गिरी गिरती गई औषध नही फिर हो सकी।

०

अन्त में तज ही दिया स्थान वह भी राम ने,
खूब ही पीछा किया उस समय था अविराम ने।[1]
अब राम को इच्छा हुई ऐसा निवासस्थान हो,
तज ने पड़े नहिं जो कभी ऐसा अटल स्थान हो।

०

करने लगे बहु खोज वे वन-वन सदा फिरने लगे,
स्थान भी नित-नित नये उनको वहाँ मिलने लगे।
अन्त में मिल ही गया एकान्त अन्तिम वास भी,
जो था घिरा भृगु गंग से एकान्त ठण्डा था सभी।

१— कई निवास स्थान थोड़े ही समय में बदले गये

ठिहरी नृपति महराज ने कुटिया बना दी झट वहीं,
राम ने रहना कलेवर[1] अन्त तक सोचा वहीं।
रहने लगे आनंद में वेदाध्ययन करते रहे,
गमना गमन होता रह उपदेश नित करते रहे।

श्रीमान् नारायण भी वहीं पे साथ में रहने लगे,
दर्शन श्रवण से निज हृदय को तृप्त थे करने लगे।
पर भाग्य उलटा हो गया अरु समय दांव चला गया,
थोड़े दिनों ही के लिए वह था जुदाई दे गया।

इक दिन विचारा राम ने स्थान अन्यक[2] चाहिए,
श्रीमन् नरायण के लिए एकान्त अन्यक चाहिए।
सोच कर मन में स्वयं फिर इक गुफा[3] उनके लिए,
तट शिष्य[4] से अपने कहा एकान्त जाने के लिये।

१– शरीर
२– दूसरा
३– वमरोगी गुफा
४– श्रीनारायण स्वामी

साथ होकर शिष्य के गुरुदेव पहुँचाने गये,[1]
मार्ग में अनुपम उन्हें उपदेश देते वे गये।
हाय ! वे उपदेश थे या वे कि अन्तिम शब्द थे,
अथवा हृदय उद्‌गार थे कैसे मनोहर शब्द थे।

राम बोले शिष्य से किंचित न घबराओ कभी,
अपने भरोसे हो खड़े आश्रय न लो किंचित कभी।
एकान्त में अभ्यास कर अन्तर मुखी बस हो रहो,
वास अब तुम राम के ही दिव्य में बस कर रहो।

राम के पार्थिव कलेवर की तजो ममता सभी,
ऐसे बनो जग में नहीं कोई करे समता कभी।
देकर उन्हें आदेश यों करके विदा लौटे वहीं,
बस आज बातें रह गईं दर्शन रहे नहिं वे कहीं।

१— अन्त में स्वामी जी श्रीनारायण स्वामी को दूर तक पहुँचाने गये थे और कहा था कि गुफा में रहो

अन्त में आ ही गया अन्तिम दिवस भीर एक दिन,
कर दिया जग में अंधेरा आज उसने राम बिन।
क्या कहें नश्वर कथायें ये सभी हैं जानते,
जग में कलेवर नष्ट होना तो सभी हैं मानते।

●

विधि नियम सर्वत्र है होना न होना हो रहा,
जगमगाता था अभी सो दृष्टि बाहर हो रहा।
आश्चर्य किंचित है नही पर खेद इतना अवशि है,
अल्पायु ही में चल वसे दुष्काल की ये प्रगति है।

●

अन्तिम दिवस मध्यान में स्नान करने को गये,
आकंठ जल में पैठकर वे शान्ति लेने को गये।
गोता लगाया ज्यों वहाँ भृगु गंग गोदी ले लिया,
ऐसा लिया फिर नहिं दिया अनमोल हीरा ले लिया।

ढूढ़ा गया फिर वह कलेवर कुण्ड में तब था मिला,
ऐसा दृढ़ासन था लगा जो मृत्यु पर भी नहिं हिला।
आभास मुख पर ओ३म् का अरुपद्म आसन था लगा,
मानों स्वयं था काल ही निज दृढ़ समाधी में पगा।

आखिर अमोलक रत्न शुभ तन हाथ से खो ही गया,
अस्त भारत भानु का फिर अन्त में हो ही गया।
क्या खिले फिर सुमन इमि उधान भारतवर्ष में,
हा बिधि नियम तू भी सहायक हो गया अपकर्ष में।

यह कमी तुम हे विध ? इस भव्य भारतवर्ष की,
पूरी करोगे कब न जाने यह अमित अपकर्ष की।
है यही शुभ कामना बस अन्त में अखिलेश से,
नर रत्न कम होवें नही बस हे प्रभू इस देश से।